धर्म जोड़ता है तोड़ता नहीं

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,

पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

धर्म मनुष्य से मनुष्य को और समाज को समाज से जोड़ता है। धर्म आत्मशुद्धि का साधन है। धर्म संसार का कल्याण करने वाला है। अहिंसा, संयम और तप को उत्कृष्ट धर्म कहा गया है। अहिंसा सभी जीवों का कल्याण करने वाली है। यदि अहिंसा को धर्म से निकाल दिया जाये तो धर्म मृतप्राय हो जाये। भारत एक धर्म प्रधान देश है। यहां धर्म की अनेकों परिभाषाएं की गयी हैं। मनुष्य के ऊपर जब कोई विपत्ति या आपदा आती है तो वह धर्म की शरण में जाता है और अपने ईष्टदेव या ईश्वर का स्मरण करता है। इससे तो यह सिद्ध है कि धर्म मानव को त्राण देता है। धर्म का द्वार सभी के लिए खुला है। जब हम देवालय जाते हैं तो बड़े मनोयोग से ईश्वर का स्मरण करते हैं। धर्म को सम्प्रदाय में विभक्त कर दिया गया है और सभी अपने–अपने धार्मिक मान्यताओं के अनुसार पूजा–पाठ करते हैं। धर्म की दृष्टि से न तो कोई छोटा है या बड़ा, सभी समान है। प्रकृति सबके साथ समान व्यवहार करती है। सूर्य का प्रकाश सभी मजहब के मानने वाले, सभी धर्मों के लोग समान रूप से ग्रहण करते हैं। कोई यह नहीं कहता कि यह प्रकाश हमारा है और यह प्रकाश तुम्हारा। गरीब और अमीर के बीच भेद यहां पर नहीं रहता। नदियों में प्रवाहित होने वाला जल मानव पशु, पक्षी सभी के लिए समान रूप से उपयोग करने के लिए है। नदी कभी भी यह नहीं कहती कि यह जल गरीबों के लिए है या अमीरों के लिए है। इस प्रकार प्रकृति सदैव मनुष्य पशु–पक्षी, दानव, मानव सभी के साथ समान व्यवहार करती है। धर्म भी एक ऐसा तत्व है जहां पर लघुता, गुरूता का कोई भेद नहीं रहता है। धर्म की शरण में भेद समाप्त हो जाता है।

धर्म बहुत ही व्यापक शब्द है। इसके अंतर्गत भावों की शुद्धता, मन की निर्मलता और सात्विक विचार का अधिक महत्व है। धर्म मूलतः किसी वस्तु का सहज गुण है। जैसे पानी का धर्म शीतलता, अग्नि का धर्म उष्णता और पृथ्वी का धर्म गंध है। इसी प्रकार जितने भी पदार्थ हैं उन सबका स्वाभाविक धर्म होता है। जब पदार्थों में विकृति उत्पन्न की जाती है तो उनके गुण धर्म भी बदल जाते हैं। आत्मा एक ऐसा तत्व है जिसमें किसी प्रकार की विकृति नहीं आती है।

यह अपने स्वरूप में चैतन्य युक्त है। शेष जितने भी पदार्थ हैं वे भौतिक तत्व हैं। उन पदार्थों में परिवर्तन, परिवर्धन होता रहता है। आत्मा और जड़ का जब संयोग होता है तो जड़ पदार्थ भी आत्मवत प्रतीत होने लगता है। शरीर जड़ है और आत्मा चेतन। शरीर से जब आत्मा का संयोग होता है तो जड़ शरीर भी आत्मवत् प्रतीत होने लगता है। शरीर से अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के कार्य किये जाते हैं।

मूलतः आत्मा के शुद्धि और अशुद्धि का कोई प्रश्न नहीं है। शरीर में शुद्धता और अशुद्धता देखी जाती है। यदि मानव अच्छा कर्म करता है तो पुण्यलोक की प्राप्ति होती है और यदि बुरा कार्य करता है तो उसे नरक की प्राप्ति होती है। इसीको ध्यान में रखकर यह बात कही गयी है कि धर्म आत्मा को शुद्ध करता है। आत्मा को न तो आंखों से देखा जा सकता है, न वाणी से कहा जा सकता है, न तो अन्य इन्द्रियों से उसे जाना जा सकता है, न तपस्या और कर्म से ही उसे जाना जा सकता है। जिसके द्वारा सारी ज्ञानेन्द्रियां अपने–अपने विषय का ज्ञान कराती हैं उसे किस साधन से जाना जाय। इसलिये कहा गया है कि 'ज्ञानप्रसादेन तं पश्यते' अर्थात् ज्ञान के द्वारा ही उसे जाना जा सकता है। जप, तप निखिलकर्मानुष्ठान ये सारे साधन आत्मविषयक आचार में परिगणित हैं, किन्तु ये केवल चित्त शुद्धि तक ही सीमित हैं।

पुरुष या आत्मा को चेतन तत्त्व तथा प्रकृति को अचेतन या जड़तत्त्व कहा गया है। इस तथ्य की सत्यता को हृदयंगम कर भारतीय ऋषियों ने अपने वेद ज्ञान के संस्मरणों, निष्कर्षों को स्मृति शास्त्र के रूप में मानव समाज के हितार्थ प्रगट किया। जिससे वे भोगवाद की आसुरीधारा में न बहकर आत्मकल्याण का सर्वप्रथम ध्यान रखें और अर्थ तथा काम के साथ ही धर्म और मोक्ष के साधन के लिये भी प्रयत्नशील रहें। मनुष्य का आध्यात्मिक विकास तभी सम्भव है, जब वह अपना आचरण शुद्ध रखे और संयम नियम का पालन करता रहे। मलिनता और अपवित्रता चाहे बाह्य हो अथवा चाहे आन्तरिक, मनुष्य के उच्चभावों को नष्ट करके उसे पाप कर्मों की तरफ प्रेरित करती हैं। इसलिये मानव को सुसंस्कारित बनाने के उद्देश्य से अनेक नियम बनाये गये है, जिससे वे अनुशासन, मर्यादा, नैतिकता आदि की शिक्षा प्राप्त करके वास्तविक मनुष्यता का विकास कर सकें।

जन्म के समय मनुष्य तथा अन्य प्राणियों में विशेष अन्तर नहीं होता, वरन् यदि देखा जाय तो मनुष्य का नवजात शिशु अन्य पशुओं के बच्चे की अपेक्षा अधिक असमर्थ और असहाय स्थिति में होता है। कुछ बड़ा होने पर भी वह स्वयं कोई नयी बात कर सकने में असमर्थ होता है। परिवार और समाज तथा अपने चतुर्दिक वातावरण से वह बहुत कुछ सीखता है। इसलिये जैसे संस्कार उसमें डाले जायेंगे वैसा ही आचरण वह समाज में करेगा। जिस देश काल व समाज में आचारण की जो पवित्र परम्परायें चलती रहती हैं, वह सदाचार है। आचार से ही धर्म की उत्पत्ति होती है। आचार धर्म का मेरुदण्ड है, जिसके बिना धर्म टिक नहीं सकता। धर्म का दृष्टिकोण मानवतावादी होना चाहिए। धर्म में रूढ़िवाद के लिए कोई स्थान नहीं है।